IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मंगलेश डबराल की कविताओं में पर्यावरणीय चिंतन

वीरेन्द्र कुमार[1] तथा डॉ.बी.एन. जागृत[2]

1. पीएचडी शोध छात्र, हिन्दी विभाग, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगांव (छ.ग.)
2. प्राध्यापक एवं शोध निर्देशक, हिन्दी विभाग, शासकीय दिग्विजय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगांव (छ. ग.)

शोध सार :–

हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चिंतन वर्तमान समय के प्रमुख चिंतनों में से एक है। इसकी आवश्यकता एवं प्रासंगिकता ने स्वमेव ही कवियों का ध्यान आकृष्ट किया है। समकालीन कवियों में मंगलेश डबराल की कविताओं में पर्यावरणीय चिंतन का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से विद्यमान है। वर्तमान पर्यावरणीय समस्याओं पर पैनी नजर रखते हुए उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। अपनी कविताओं में मंगलेश डबराल ने पर्यावरणीय विनाश की पीड़ा, पर्यावरण और मनुष्य के अटूट संबंध, पृथ्वी के प्रतिकूल वातावरण, पर्यावरणीय प्रदूषण, वर्तमान बाजारवादी एवं पूंजीवादी प्रवृत्ति, मानवीय स्वार्थ, उपभोक्तावादी दृष्टिकोण, प्रकृति एवं पर्यावरण के महत्व आदि की संवेदनशील अभिव्यक्ति की है। पर्यावरणीय समस्याओं पर उनकी काव्यदृष्टि स्पष्ट एवं व्यापक रूप से परिलक्षित होती है।

बीज शब्द : हिन्दी कविता, पर्यावरणीय चिंतन, पर्यावरणीय समस्याएं, पर्यावरणीय प्रदूषण, मानवीय स्वार्थ

पर्यावरणीय संचेतना आज केवल एक बौद्धिक विमर्श नहीं रही, बल्कि यह जीवन और साहित्य दोनों के लिए अनिवार्य प्रश्न बन गई है। जल, जंगल और जमीन हमारी सभ्यता का आधार है, परंतु विकास की अंधी दौड़ और औद्योगिकीकरण के बढ़ते दबाव ने इन्हें भारी संकट में डाल दिया है। इस संदर्भ में भारतीय कविता पर्यावरणीय संकटों के परिहार के लिए एक तरह का प्रतिरोध खड़ा करती है। मंगलेश डबराल की पर्यावरणीय कविताए¡ मानवीय संघर्ष, स्मृतियों और भविष्य की संभावनाओं के रूप में प्रस्तुत होती है। उनकी रचनाएँ पाठकों में पर्यावरणीय संवेदना और चेतना को जगाने का एक ऐसा उपकरण साबित हुई है जो एक साथ काव्यात्मकता और पर्यावरणीय चिंता दोनों को पूरी दृष्टि संपन्नता से साधती है।[1]

मंगलेश डबराल की कविताओं में पर्यावरणीय चिंतन के अध्ययन का शुभारंभ हम उनकी कविता 'यहाँ थी वह नदी' से करते हैं। जब कोई नदी सूख जाती है, तब केवल रेत ही रेत शेष बचता है। एक नदी के सूखकर रेत बन जाने की पीड़ा को व्यक्त करते हुए मंगलेश जी कहते हैं –

''हमें याद है
यहां थी वह नदी इसी रेत में
जहां हमारे चेहरे हिलते थे
यहां थी वह नाव इंतजार करती हुई
अब वहां कुछ नहीं है
सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं
कभी–कभी एक आवाज सुनायी देती है रेत से''[2]

जंगल और मनुष्य का अटूट संबंध है। आदिकाल से मानव सभ्यता जंगलों की गोद में पुष्पित–पल्लवित होते आ रहा है। जंगल, प्रकृति के अनमोल उपहारों मे से एक है, जिसने न केवल मानव सभ्यता को संरक्षण प्रदान किया है बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी को जीवन योग्य बनाने के लिए महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया है। 'पहाड़ पर लालटेन' कविता में मंगलेश जी जंगल और मनुष्य के मध्य गहरे संबंध तथा जंगलों के विनाश पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

''जंगल में औरते हैं
लकड़ियों के गट्ठर के नीचे बेहोश
जंगल में बच्चे हैं
असमय दफनाये जाते हुए
जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं
डरते–खांसते अंत में गायब हो जाते हुए
जंगल में लगातार कुल्हाड़ियां चल रही है।
जंगल में सोया है रक्त''[3]

विज्ञान और तकनीक के मद में चूर आधुनिक मानव अति महत्वाकांक्षी हो गया है। अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में नित नूतन अनुसंधानों और नवीन तकनीकों की मदद से वह अन्य ग्रहों और उपग्रहों में भी बस्तियां बसाने के सपने देख रहा है। किन्तु उसने स्वयं के घर पृथ्वी पर अपने स्वार्थपरक तथा अमानवीय कृत्यों से जिस प्रकार के वातावरण का निर्माण किया है उसे देखकर यही लगता है कि उसके कदम अन्य ग्रहों–उपग्रहों पर न पड़े तो ही सर्वथा उचित रहेगा। पृथ्वी पर हो रहे 'अमंगल' को कवि ने अपनी कविता 'मंगल' के माध्यम से चित्रित किया है–

''गोल सुन्दर लाल और अभी–अभी
अपनी कक्षा से घूमकर आया मंगल ग्रह
जहाँ पृथ्वी की तरह खून से सनी जगहें ढहे हुए घर
और जिन्दा जलाए जाते लोग नहीं थे''[4]

वर्तमान शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के दौर में वायु प्रदूषण एक ज्वलंत समस्या है। इसी समस्या को केन्द्र में रखकर 'घटती हुई ऑक्सीजन' कविता में वे चिंता व्यक्त करते हैं–

''अकसर पढ़ने में आता है
दुनिया में ऑक्सीजन कम हो रही है
कभी ऐन सामने दिखाई दे जाता है कि वह कितनी तेजी से घट रही है''[5]

'यथार्थ इन दिनों' कविता में मंगलेश जी ने मनुष्य के बाजारवादी प्रवृत्ति के स्वरूप का सजीवता से वर्णन किया है। उनकी पंक्तियां मनुष्य की लोलुपता का कुरूप चेहरा उजागर करती हुई कहती हैं–

''हिंस्र पशुओं से भरी हुई रात चारों ओर इकट्ठा हो रही है
एक लुटेरा एक हत्यारा एक दलाल
आसमानों पहाड़ों मैदानों को लांघता हुआ जा रहा है
उसके हाथ धरती के मर्म को दबोचने के लिए बढ़ रहे हैं''[6]

'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' की सद्भावना रखने वाला व्यक्ति ही असली मनुष्य है। यह सद्भावना मनुष्य और पर्यावरण दोनों के लिए हितकारी है। 'ताकत की दुनिया' कविता में कवि ने तथाकथित ताकतवर तबके को आइना दिखाते हुए कहा है–

''मैं क्यों रहने जाऊंगा चांद पर
वह मुझे धरती से ही दिखाई देता है बहुत सुंदर
तीन डग में ही मैं क्यों नाप लूंगा तीन लोक
सब कुछ छीनकर किसी को क्यों भेजूंगा पाताल
मैं क्यों कब्जा करूंगा इस धरती पर
किसी को जरूरत हुई तो दे दूंगा उसे जो भी होंगे मेरे खेत खलिहान
मैं कोई दरिंदा नहीं
जो किसी धरती पर बम गिराने चला जाऊँगा
मैं मनुष्य हूँ''[7]

संपूर्ण धरती को एक बाजार समझने वाला मनुष्य पर्यावरणीय विनाश करके धन अर्जित करने के उपक्रम को 'कुशल प्रबंधन' की संज्ञा देता है। किन्तु वह इसी प्रबंधन के कारण पृथ्वी को कई टुकड़ों में बांट रहा है और उसकी अनदेखी कर मदांध बन बैठा है –

''अन्याय का पता न चलने देना अन्याय का कुशल प्रबंधन है
लूट का न दिखना लूट की कला है
दुनिया में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं है
बल्कि सब कुछ अत्यंत प्रबंधनीय है
बशर्ते जो ठीक है ठीक से प्रबंधनीय हो
बशर्ते एक व्यवस्था के बिगड़ते ही
हम तुरंत दूसरी व्यवस्था का प्रबंधन कर सकें
एक पृथ्वी के बुझने पर तुरंत हाजिर हो सके दूसरी पृथ्वी
और यह पृथ्वी भी जो बाहर से एक दिखती है
गोल और सुंदर घूमती हुई
दरअसल भीतर से कई गोलार्धों में बंटी हुई है
और हमारे कुशल प्रबंधन के तहत और भी ज्यादा बंटती जा रही है''[8]

प्रकृति अपने समस्त स्वरूपों में अप्रतिम है। उसकी समस्त अभिव्यक्तियाँ सार्थक हैं। प्रकृति का कण–कण सृजन का द्योतक है। प्रकृति ही मनुष्य का वास्तविक घर है। मुनष्य को नहीं भूलना चाहिए वह प्रकृति से अभिन्न नहीं है। मंगलेश जी की कविता 'घर का पत्थर' मनुष्य को यही याद कराते हुए अभिव्यक्त हुई है–

''यह पत्थर मनुष्यों के घर बनाता है
इसे आप बेघर मत समझिए
जो यों ही लावारिस पड़ा रहता हो
बर्फ बारिश और धूप की मारें झेलता हुआ
इसका भी एक घर है
ठीक वहाँ जहाँ यह मनुष्यों के लिए घर बनाता है''[9]

मंगलेश जी संपूर्ण पृथ्वी को अपनी जन्मभूमि मानते हैं। उन्हें अपनी जन्मभूमि से प्रेम है। इस प्रेम से उपजी जिम्मेदारी का निर्वहन उन्होंने अपनी कविता में पृथ्वी के वर्तमान चिंतनीय दशा को रेखांकित करते हुए किया है –

''तुम्हारे भीतर से किसी नदी किसी चिड़िया की आवाज नहीं आती
तुम्हारे पेड़ हवा देना बन्द कर रहे हैं
मैं सिर्फ बाजार का शोर सुनता हूँ या कोई शंखनाद सिंहनाद
और जब तुम करीब से कुछ कहती हो
तो वह कहीं दूसरे छोर से आती पुकार लगती है
मैं देखता हूँ तुम्हारे भीतर पानी सूख रहा है
तुम्हारे भीतर हवा खत्म हो रही है
और तुम्हारे समय पर कोई और कब्जा कर रहा है''[10]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि मंगलेश डबराल की कविताओं में पर्यावरणीय समस्याओं का सार्थक चिंतन व्याप्त है। उनकी कविताओं में पर्यावरणीय चिंतन की सफल अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। मंगलेश डबराल ने कविताओं में पर्यावरणीय चिंतन को एक नया आयाम प्रदान किया है।

संदर्भ :–

(1) कुमार, सुशील. बाँसलोई में बहत्तर ऋतु. हिन्द युग्म प्रकाशन, नोएडा, 2025, पृ.क्र. 35 एवं 43
(2) डबराल, मंगलेश. पहाड़ पर लालटेन. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण, 2014, पृ.क्रं. 16
(3) वही, पृ.क्रं. 64
(4) डबराल, मंगलेश. प्रतिनिधि कविताएँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण, 2023, पृ.क्र. 76
(5) डबराल, मंगलेश. नये युग में शत्रु. राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013, पृ.क्रं. 12
(6) वही, पृ.क्र. 21
(7) वही, पृ.क्र. 36
(8) वही, पृ.क्र. 44
(9) डबराल, मंगलेश. पानी का पत्थर. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृ.क्र. 28
(10) वही, पृ.क्र. 92